प्रवचन–12, गाथा–320 (दादर मन्दिर)

सूक्ष्म विषय है। अनादि का अभ्यास नहीं है, इसलिए इसे गहन और कठिन लगता है परन्तु वस्तु तो इसके घर की है। .... सत्, सत् है, सत् सर्वत्र है, सत् सरल है परन्तु इसका अभ्यास नहीं और वर्तमान सुनने में मुख्य बात प्रयोजनभूत ऊँची आवे, इसलिए इसे कठिन और गहन लगती है।

अपने अधिकार यहाँ आया है कि यह आत्मा जो वस्तु है, इसमें दो प्रकार हैं। एक त्रिकाली ध्रुवपना और एक वर्तमान पर्याय – उत्पाद-व्यय-पर्याय – अवस्थापना। क्षण-क्षण की अवस्था बदले, उसे पर्याय कहते हैं और त्रिकाली बदले नहीं और कायम एकरूप रहे, उसे ध्रुव कहते हैं। भाषा तो... अभ्यास करना पड़ेगा। आहा...हा...!

कहते हैं कि देहादि, वाणी आदि पर है, उनके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। त्रिकाली -आत्मा की जो अस्ति, उसका अस्तित्व, द्रव्य और गुणरूप है; और पर्यायरूप अस्तित्व है। शास्त्र में ऐसा आता है कि द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्, यह सत् का विस्तार है (प्रवचनसार की) 107 गाथा है। परवस्तु पररूप रही; यहाँ तो अपने को आत्मा में उतारना है। द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड जो वस्तु है, वह सत् है और उसके ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, स्वभाव है, गुण है, वे भी सत् हैं परन्तु जैसे द्रव्य अविनाशी सत् है, वैसे गुण जो त्रिकाली शक्तियाँ, (वे) भी अविनाशी सत् है। अब उसमें पर्याय–जो बदलती दशा, वह है तो सत्, परन्तु उसकी अवधि एक समय की है। पलटती दशा है, उस पलटती दशा को पर्याय कहते हैं।

यहाँ कहते हैं कि जो वस्तु है, वह परमस्वभावभाव ध्रुव है। आहा...हा...! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें, एक समय का ज्ञान भी तीन काल-तीन लोक को जाने, तथापि उस एक समय के ज्ञान की सामर्थ्य, उससे अनन्तगुना लोक और अलोक हो तो भी जाने, वैसी उसकी एक समय की ज्ञान की पर्याय की ताकत है। ऐसे जो सर्वज्ञ भगवान, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए। अग्नि किसे नहीं जलाये? वैसे ही ज्ञान की पर्याय किसे न जाने? सब जाने, होवे उतना जाने, न होवे वह भी यदि अनन्त हो तो भी जाने -

ऐसी आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय की ताकत है। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा को इच्छा बिना वाणी निकली, उसमें यह आया कि त्रिकाली चीज निष्क्रिय है। आहा...हा...! निष्क्रिय अर्थात्? रागबन्ध के कारणरूप मिथ्यात्व और राग, इस परिणति क्रिया से रहित वस्तु है और मोक्ष के कारणरूप जो निर्मल आनन्द की दशा, पूर्ण आनन्द का मोक्ष, उसे प्राप्त करने की अपूर्ण आनन्द की दशा, वह भी क्रिया है, वह ध्रुव में नहीं है। समझ में आया?

इसलिए ऐसा जाना जाता है कि शुद्ध पारिणामिकभाव ध्येयरूप है। आहा...हा...! सारांश यहाँ लेना है। धर्मी को ध्येय कौन? धर्मी को किस चीज लक्ष्य में लेनेयोग्य है? कि त्रिकाली चीज, वह धर्मी को लक्ष्य में लेनेयोग्य है। समझ में आया? आहा...हा...! अरे! इसकी चीज क्या है? उसमें क्या भण्डार है? आहा...हा...! अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति, ऐसे स्वभाव का सागर आत्मा है। ऐसा जो आत्मा शुद्ध ध्रुव पारिणामिकभाव, वह ध्येयरूप है। बस मोक्ष की पर्याय, मोक्ष का कारण जो मोक्ष का मार्ग (ऐसी) मोक्षमार्ग की पर्याय जो ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुई, ध्रुव के ध्येय से (प्रगट हुई) परन्तु वह पर्याय पलटती / नाशवान है और त्रिकाली चीज, वह ध्रुव और अविनाशी है। आहा...हा...!

इसलिए योगीन्द्रदेव ने भी कहा है कि

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥68॥

जिनवर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, सभा के बीच इन्द्रों और गणधरों की उपस्थिति में ऐसा फरमाते थे। ऐसा योगीन्द्रदेव कहते हैं, जिनवर ऐसा कहते हैं कि हे योगी! परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं... आहा...हा...! भगवान जो त्रिकाली ध्रुव चीज है, वह पर्याय में नहीं आती। समझ में आया?

जिनवर ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ – जिन्हें सौ इन्द्र तलिया चाटे, इन्द्र जिनके समक्ष सभा में पिल्ले की तरह सुने। आहा...हा...! ऐसे जिनवर ऐसा कहते हैं कि जिसे हम जीव कहते हैं, नित्यानन्द प्रभु ध्रुव जीव; वह जीव, पर्याय में नहीं आता। आहा...हा...! उपजता नहीं अर्थात् पर्यायरूप नहीं होता। आहा...हा...!

भाई ! यह तो पाताल कुएँ का पेट है। कभी सुना नहीं, जमा नहीं। बाहर ही बाहर में यह करना, यह करना, यह छोड़ना या ध्यान कर लिया। अभी आया तो कहे ध्यान करता हूँ। किसका धूल का ध्यान? चीज क्या है, वह दृष्टि हुई नहीं और दृष्टि में वह चीज ऐसी है – ऐसा ज्ञान हुआ नहीं तो जिसमें स्थिर होना है, वह ज्ञान हुआ नहीं तो स्थिर करे किस प्रकार? ध्यान करे ॐ... ॐ.... ॐ.... अब लाख ॐ... ॐ... कर न, वह तो विकल्प है।

यहाँ तो कहते हैं कि स्वरूप जो त्रिकाल है, उसका जो ध्यान, उसमें जीव आता नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! है? योगीन्द्रदेव परमात्मप्रकाश में ऐसा फरमाते हैं कि जिनवरदेव सभा में इन्द्रों और गणधरों के बीच ऐसा कहते थे कि हे योगी! योगी अर्थात् अन्दर आत्मा स्वरूप का जुड़ान करे उसे योगी कहते हैं। त्रिकाली चीज में ज्ञान की पर्याय को जोड़े, वह पर्याय की अवस्था है। परन्तु एक समय की अवस्था, वह त्रिकाली दल नहीं है; त्रिकाली दल तो भिन्न है। त्रिकाली दल एक समय में नहीं आता – ऐसा भगवान आत्मा की पर्याय में आत्मा नहीं आता। अजब की बातें हैं, बापू! दूसरों को तो ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं? पागल हो जायेगा। परमात्मप्रकाश में कहा है, धर्मी को अज्ञानी पागल मानता है और धर्मी, अज्ञानियों को पागल मानता है और पागल की इसे रिपोर्ट चाहिए। क्या कहलाता है? सर्टीफिकेट। वह सर्टीफिकेट कहे तो सच्चा... अरे! चल... चल...

यहाँ तो परमात्मा का सर्टीफिकेट ऐसा है, कहते हैं... आहा...हा...! कि जिस त्रिकाली चीज की दृष्टि जिसने की है, ऐसा जो सम्यग्दृष्टि, वह ऐसा मानता है कि मेरी पर्याय में मैं सम्पूर्ण आता नहीं। आहा...हा...! मेरी क्रीड़ा पर्याय में द्रव्य के आश्रय से हुआ करती है। राग में नहीं, पर में नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? यह बोधिबीज की बात है। आज दूज है न? दूज उगे उसे पूर्णिमा हुए बिना तीन काल में नहीं रहती। दूज उगे और दूजरूप ही अटक जाये – ऐसा तीन काल में नहीं होता परन्तु दूज और तीज और पूर्णिमा यह सब पर्यायें हैं। चन्द्र की–त्रिकाल की। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहा...हा...! पागल और मूर्ख कहे, ऐसा है – दुनिया के चतुर हों वे।

यहाँ तो आचार्य महाराज जयसेनाचार्य स्वयं इसकी टीका करते हुए आधार योगीन्द्रदेव

का भी दिया। मैं कहता हूँ – ऐसा नहीं परन्तु परमात्मा की बात तो योगीन्द्रदेव भी कहते हैं। वे ऐसा कहते हैं, जिनवर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा कहते थे कि परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं। 'भी' क्यों लिया? दूसरा लेना है इसलिए। 'भी' क्यों लिया? उपजता भी नहीं, मरता भी नहीं, यह लेने के लिये 'भी' लिया है।

फिर से – जो सम्यग्दृष्टि का ध्येय ध्रुव है और ध्रुव का ध्यान करने से जो समकित पर्याय प्रगट होती है, उस पर्याय में ध्रुव नहीं आता। 'घेला न जाणसो रे प्रभु ने पहेला छे। जगतडा कहे छे रे भगतडा काला,' काली-काली बातें करे – ऐसा आत्मा... ऐसा आत्मा... सुन न अब... 'जगतड़ा कहे छे भगतड़ा काला छे, पण काला न जाणसो रे प्रभु ने ए वहाला छे।' जिसे आनन्द का नाथ प्रिय है, जिसे... प्रिय नहीं, पर्याय प्रिय नहीं उसे भगत कहा जाता है। समझ में आया? डाह्याभाई !

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - ..... 48 वाँ व्याख्यान चलता है। सुनो, बापू! यह है। वीतराग के घर की बातें यह है। इसके अतिरिक्त कुछ दूसरा करे, वह वीतराग के घर की नहीं, इसके स्वच्छन्द की सब बातें हैं। समझ में आया? यहाँ तो ढ़िंढोरा पीटकर कहते हैं। कहाँ... बातें। आहा...हा...!

कहते हैं **जीव उपजता भी नहीं....** आहा...हा...! गजब नाथ! उसे हम जीव कहते हैं, जिस त्रिकाली ध्रुव को हम जीव कहते हैं, वह जीव, पर्याय में – धर्म की पर्याय में आता नहीं, राग में तो कहाँ से आये? राग में तो है कहाँ उसमें? वह तो जिसके आश्रय से धर्म परिणति / आनन्ददशा / समकित प्रगट हुआ, उसमें वह जीव उत्पन्न नहीं होता, पर्याय में ध्रुव आता नहीं। आहा...हा...! दूसरी एक अपेक्षा ऐसी है कि धर्म की पर्याय जो उत्पन्न होती है, उसे ध्रुव के आश्रय की जरूरत नहीं। गजब बातें हैं, बापू! यह तो दुनिया की नहीं, अगम्यगम्य की है। यह तो सम्यग्दर्शन होने की पहली विधि यह है, बाकी सब व्यर्थ है। यह क्या कहा?

जो वस्तु है त्रिकाल भगवान ध्रुव, सम्यग्दर्शन की पर्याय का वह विषय है परन्तु विषयी, जो विषय करनेवाली पर्याय है, उसमें भी आता नहीं, एक बात और जो सम्यग्दर्शन

की पर्याय आनन्द की दशा उत्पन्न हुई, उसे 101 गाथा प्रवचनसार – दिव्यध्वनि का सार... जो आत्मा का अन्तर सम्यग्दर्शन, जिसके सम्यग्दर्शन में अखण्डानन्द प्रभु और नित्य कायमरूप ध्रुव रहता है, उसे जिसने ध्येय बनाया, उसे सम्यग्दर्शन होता है, उस सम्यग्दर्शन में निमित्त ध्येय नहीं, देव-गुरु भी ध्येय नहीं, देव-गुरु की श्रद्धा – राग रखे, वह भी उसके सम्यग्दर्शन में ध्येय नहीं। राग की मन्दता वह सम्यग्दर्शन में ध्येय नहीं। सम्यग्दर्शन आदि की जो पर्याय है, वह भी सम्यग्दर्शन का ध्येय नहीं। आहा...हा...!

अरे! ऐसा परमात्मा अन्दर रह जाता है कि जिसकी आड़ में राग की मन्दता और पर्याय की बुद्धि में रुककर चिदानन्द नाथ प्रभु रह गया। अनन्त बार मुनिपना लिया, नग्न मुनि हुआ, ...अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ, उससे क्या? पंच महाव्रत के विकल्प लिये उससे क्या? वह कोई चीज नहीं। चीज तो आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर... आहा...हा...! जिसमें से अनन्त आनन्द की दशायें बहें, जिसमें से अनन्त ज्ञान की, केवलज्ञान की पर्यायें प्रवाहित हों – ऐसा जो साधन / वस्तु त्रिकाल, उसकी दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन – धर्म की पहली शुरुआत नहीं होती। आहा...हा...!

इसलिए बहुत-सों को ऐसा लगता है कि निश्चय और व्यवहार, शास्त्र में दो कहे हैं। दो कहे, प्रभु! परन्तु किसे? जिसने अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, अन्तरशान्ति और आनन्द का सागर प्रभु, उसका जिसे अन्तर में दृष्टि करके अनुभव हुआ है – ऐसे निश्चय सम्यग्दृष्टि को जो कुछ पूर्ण वीतरागदशा नहीं है और अशुभ से बचने के लिये उसे शुभभाव आता है, उसे समकिती को–निश्चयवाले को व्यवहार कहा जाता है। .....उसमें राग की मन्दता है, वह पुण्य है परन्तु वह बाहर में... इसलिए उसे धर्म हुआ – ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु – बारह लाख मुफ्त में गये।

पूज्य गुरुदेवश्री – थे कब इसके? इसके कब थे कि मुफ्त में जाये? यह बैठे, यह बैठे देखो! 'जुगराजजी'। उसमें तो ऐसा बना है, यहाँ की छाप जरा ऐसी है न कि महाराज की लकड़ी में कुछ है। कहाँ गयी लकड़ी? लकड़ी में कुछ नहीं, प्रभु! यह तो हाथ में पसीना आता है, शास्त्र को छुआ नहीं जाता, इसके लिए लकड़ी रखते हैं। लकड़ी किसी पर फिराते हैं और पैसा (मिलता है) ऐसा तीन काल में नहीं है परन्तु बन जाये ऐसा कि

भभूतमलने आठ लाख खर्च किये, उसमें सोलह दिन यहाँ रुके और दो करोड़ का स्टील था, उसके चालीस लाख बढ़ गये। यह रहे, बेंगलोर। (वहाँ लोगों को ऐसा लगता है कि) महाराज की (लकड़ी) फिरे वहाँ पैसा (हो जाता है)। बापू! यह कुछ नहीं, भाई! यह तो वर्तमान सत्य बात सुनते हुए उसका शुभभाव है, वह पुण्य है, उसके कारण पूर्व के पुण्य में पुण्य बँध जाता है। और उसका उदय आ जाये तो उसके कारण पैसा आदि धूल मिले। पैसा आदि धूल, वह कहीं आत्मा का कार्य है और आत्मा को लाभ है – ऐसी तो कोई चीज है नहीं। आहा...हा...!

यहाँ तो व्यवहार उसे कहते हैं कि जिसे ज्ञायक आनन्द के नाथ का अनुभव (होकर) जिसे वर्तमान दशा में त्रिकाली स्वभाव का पता लग गया है कि यह तो आनन्द का सागर है। आहा...हा...! जिसे वर्तमान दशा में अतीन्द्रिय आनन्द का अतीन्द्रिय स्वाद आता है। आहा...हा...! उस अतीन्द्रिय स्वाद की दशा को समकित कहा जाता है। समझ में आया? कि जिस अतीन्द्रिय स्वाद के समक्ष समकिती को इन्द्र के इन्द्रासन, करोड़ों अप्सराएँ और इन्द्रों के भोग, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष, समकिती की प्रतीति के समक्ष वे इन्द्र के भोग सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली की गन्ध मारे (दुर्गन्ध) (ऐसे लगते हैं)। ....वह ममता के कारण है। और निर्धन दुःखी है, वह कहीं पैसा नहीं है, इसलिए (दुःखी है) ऐसा नहीं है। मैं निर्धन हूँ – ऐसी दीनता के कारण दुःखी है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहना है.... व्यवहार और निश्चय भगवान ने कहा है। व्यवहार और निश्चय (भगवान ने कहा है) परन्तु व्यवहार और निश्चय किसे होते हैं?

वह यहाँ कहते हैं। **ध्यानरूप ध्येय है, वह ध्यानरूप नहीं....** आहा...हा...! गजब है न? एकरूप सदृश ध्रुव चैतन्य भगवान आनादि अनन्त नित्यानन्द प्रभु ध्येयरूप है, अर्थात् लक्ष्य में लेने योग्य है और लक्ष्य में लेने योग्य में ध्यान की पर्याय उसमें नहीं है। है? **ध्येय है, वह ध्यानरूप नहीं है....** आहा...हा...! ऐसी बातें! मुद्दे के रकम की बातें हैं। पाँच–दस लाख दिये हों – आठ आने या रुपये (ब्याज पर दिये हों) चाहे जो (हो) अभी, पहले आठ आने और छह आने थे; और बीस वर्ष तक खाया हो फिर कहे भाई! मैंने दस लाख दिये हैं और बीस वर्ष खाया है। लाओ, पैसा नहीं, हाय... हाय...! ब्याज

खाकर मर गया। मूल रकम तो है नहीं। इसी प्रकार पुण्य का परिणाम कर-करके अनादि से मर गया परन्तु मूल रकम जो रागरहित आनन्द का नाथ प्रभु है, उस मूल रकम को भूल गया। तब तूने क्या किया? शून्य किया। आहा...हा...!

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनवरदेव... ऐसा आया न? देखो, **क्योंकि ध्यान विनश्वर है।** आहा...हा...! यह फिर से थोड़ा लिया। योगीन्द्रदेवने भी कहा है। परमात्मप्रकाश एक सिद्धान्त है, उसमें योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर मुनि आत्मज्ञानी आनन्द के रसिक, स्वसंवेदन में प्रचुर आनन्द के अनुभवी को मुनि कहा जाता है। श्री योगीन्द्रदेव कहते हैं कि **हे योगी! परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं।** आहा...हा...! शरीररूप उपजता नहीं, ऐसा नहीं। शरीर का जन्म हुआ, इसलिए जन्मा–ऐसा नहीं। शरीर का व्यय हुआ, इसलिए मरण हुआ–ऐसा नहीं। कील लगे, लोहा लगे... प्रवीणभाई! सब पता तो होता है न तुम्हारा? (तब ऐसा कहे) पानी छूने देना नहीं। क्यों? (क्योंकि) मेरी मिट्टी पकनेवाली है - ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं यह? लोहे के जंगवाली कील-बील लग गयी हो... मेरी मिट्टी पकाउ है, पानी लगने नहीं देना। यह क्या बोलता है? मेरी मिट्टी पकनी है, इसे मिट्टी कहता है और फिर कहता है कि मेरी है। इस मिट्टी का माटी चैतन्य भगवान अन्दर अलग चीज है। समझ में आया? इसका जाननेवाला।

वह यहाँ कहते हैं कि इस चैतन्य के ध्येय को पकड़े बिना जो कुछ राग की मन्दता की क्रिया हो, वह मुर्दा है। उसमें मूर्च्छित हो गया है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। आहा...हा...! परन्तु जिसे ध्येय का अनुभव हुआ है, फिर उसे राग की मन्दता आती है, वह है तो अचेतन परन्तु उसे व्यवहार कहने में आता है। एक के बिना शून्य को शून्य गिनने में नहीं आता। परन्तु एक (अंक) होवे तो फिर शून्य रखे तो नौ की संख्या बढ़ा दे परन्तु वह एक है, वह बढ़ा देता है, हों!

इसी प्रकार भगवान पूर्णानन्द का नाथ... **परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं।** पर्याय में आता नहीं – ऐसा कहते हैं। शरीर में आता नहीं – ऐसा नहीं; वह तो मिट्टी धूल है, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। **परमार्थ से जीव उपजता नहीं...** अर्थात् वर्तमान पर्याय में,

निर्मल पर्याय में भी वह द्रव्य / ध्रुव आता नहीं। क्योंकि पर्याय एक समय की है और ध्रुव त्रिकाल है। त्रिकाल एक समय में आ जाये तो दूसरे समय में पर्याय नाश हो तो त्रिकाल भी (ध्रुव का भी) नाश हो जाये (परन्तु) ऐसा होता नहीं। आहा...हा...! ऐसे नियम और कायदे।

मरता भी नहीं... मरता अर्थात्? ये शरीर मरे, वह नहीं परन्तु उसकी वर्तमान अवस्था है, वह व्यय हो, दूसरे समय उपजती है दूसरी अवस्था। पहली अवस्था उत्पन्न थी, उसका व्यय होता है और दूसरी अवस्था उत्पन्न होती है। प्रत्येक में परिणमन बदला करता है। उसमें प्रथम अवस्था का व्यय हो, उसे मरण करते हैं। क्या कहते हैं अकेली बोरी को? सण की बोरी। अकेले बोरी को क्या कहें? सण की बोरी, कपड़े की थैली, डोरे की, सूत की थैली जो कुछ भी हो परन्तु यह तो सण की होती है, किन्तु माल भरे, तब उसे ऐसा कहा जाता है कि यह धान की बोरी, बाजरे की बोरी (है)।

इसी प्रकार आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु जब सम्यग्दर्शन में अनुभव में आता है, वह माल जब प्रगट हुआ, तब राग की मन्दता और व्यवहार बोरी / बारदान कहने में आता है। समझ में आया? समझ में आया रखा था न भाई अपने? रमेश-रमेश... रखा था... क्या भाषा कही? ...भाषा तो गुजराती अच्छी रखी है। आहा...हा...!

कहते हैं नित्यानन्द प्रभु जो ध्रुव है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है, जो धर्मी का ध्येय। धर्मी की दृष्टि वहाँ ध्रुव पर तैरती है। वह पर्याय में व्यय होने पर मरता नहीं, पर्याय उत्पन्न होने पर वह उसमें उत्पन्न नहीं होता तथा बन्ध को नहीं करता। त्रिकाली चीज मिथ्यात्व को नहीं करती – ऐसा कहते हैं। जो मिथ्याश्रद्धा है, पर में सुख नहीं होने पर भी, सुख माने–ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह ध्रुवतत्त्व नहीं, कहते हैं। पर्याय है। आहा...हा...! और मोक्ष नहीं करता। है? ध्रुव चीज है, वह मोक्ष को नहीं करती। आहा...हा...! निर्मल पर्याय का कर्ता निर्मल पर्याय है। निर्मल पर्याय का कर्ता ध्रुव नहीं है। आहा...हा...! जंगल में से काला नाग धीरे-धीरे चला आवे, वह सभा में बैठे, साथ में चूहा हो तो उसे भय नहीं। ऐसा जो सुने भगवान की वाणी... आहा...हा...! डोल उठे पूरी दुनिया उस समय! दिव्य ध्वनि अमृत के सागर की धोधवाणी मिनकले वह दिव्यध्वनि, वह जिनवर ने कही है। उस ध्वनि में ऐसा कहा है।

आहा...हा...!

क्या कहा? .....यहाँ क्या कहते हैं? जो त्रिकाली वस्तु है, उसे ध्येय बनाकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, वह पर्याय है। क्या कहा? जो त्रिकाली ज्ञायक आनन्द का नाथ प्रभु! पाताल कुआँ अन्दर है, उसमें दृष्टि देकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल हुआ, उसे एक शुद्धानयाश्रित एकदेश शुद्धनयाश्रित... पूर्ण होवे वह तो केवलज्ञान हुआ परन्तु यह तो मोक्ष का मार्ग है, यह एकदेश शुद्धनय है। एक अंश शुद्ध है। भाषा अलग, भाव अलग! सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण करके मर गये, परन्तु यह क्या है – इसका पता ही नहीं होता। आहा...हा...!

कहते हैं जो आत्मा त्रिकाली प्रभु, जिसे पारिणामिकभाव से ध्रुव कहा है और जिसकी पर्याय में चार पर्याय, चार भाव कहे थे। उनमें उदयभाव तो मलिन है। दया, दान, व्रत, उन्हें तो छोड़, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं परन्तु मोक्ष के कारणरूप से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक अर्थात् जिसकी निर्विकारीदशा को मोक्ष का कारण कहा था, वह निर्विकारीदशा एकदेश शुद्धनयाश्रित है। वह शुद्धनय पूर्ण नहीं है। एक भाग शुद्धनयाश्रित यह भावना... यह भावना अर्थात् मोक्षमार्ग पर्याय। कहने योग्य आंशिक शुद्धि.... है न?.... का अर्थ किया.... का अर्थ किया। कहना चाही हुई, कहना चाहते हैं वह। तथापि उस वीतरागी पर्याय में ध्रुव आत्मा नहीं आता। भगवान! बातें बापू... पूरी दुनिया सब बहुत कहे। सब सुना, देखा है। समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ तो (संवत्) 1965 की साल से ये सब शास्त्र का अभ्यास दुकान पर था। 65 के साल, कितने वर्ष हुए? कितने आचारांग, सूत्रांग, ठाणांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, सब दुकान पर (पढ़े थे)। पिताजी की दुकान थी। निवृत्ति बहुत... मैं भगत कहलाता था। छोटी उम्र से यह अभ्यास करते... करते... करते... सब आया। जहाँ... उसमें समयसार जहाँ हाथ आया... आहा...! अरे! एक सेठ थे गृहीत, उन्होंने कहा सेठ! अशरीरी होने की पुस्तक होवे तो यह समयसार है। यह (संवत्) 1978 के साल की बात है। 22+32=54 वर्ष पहले की बात है। आहा...हा...!

यह यहाँ कहते हैं, आत्मा के अपने स्वभाव निर्मल समकित, निर्मल ज्ञान द्वारा ज्ञात

हो – ऐसा है। राग द्वारा या विकल्प के ध्यान द्वारा ज्ञात हो, ऐसा यह भगवान आत्मा है नहीं और इसे ऐसा जानना कि राग द्वारा ज्ञात हो (तो) वह आत्मा को कलंक लगाने जैसा है। समझ में आया? इसका... है। अपने को तो यह इतना ही है।

उत्पन्न नहीं होता और बन्ध-मोक्ष को नहीं करता। आहा...हा...! यह पर्याय, बन्ध को करे और पर्याय मोक्ष को करे और पर्याय उपजे और पर्याय व्यय हो। ध्रुव जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह तो बन्ध और मोक्ष को भी नहीं करता। थोड़ा लिखा बहुत समझकर जानना।